International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 5; September 2018; Page No. 68-73

स्त्री जीवन की त्रासदी और मृदुला गर्ग के उपन्यास का अध्ययन

मीनू साकेत
शोधार्थी हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
आज सारी दुनियाँ में स्त्रीवादी चिन्तन, लेखन और स्त्रीमुक्ति के आन्दोलनों के माध्यम से स्त्रियाँ अपने बारे में सजग और सचेत हुई हैं। स्त्रीवादी चिन्तन ने मानव समाज और संस्कृति के इतिहास में स्त्रियों की बदलती हुई स्थिति और भूमिका का गंभीर विवेचन करते हुए आज के युग में स्त्री की बदलती हुई स्थिति समझने–समझाने में काफी मदद की है। आज स्त्रियाँ पुरानी रूढ़ियों और तरह–तरह के अत्याचारों से मुक्ति अपने अधिकारों की रक्षा और व्यापक रूप में स्त्री समुदाय की स्वतंत्रता की दिशा में आगे बढ़ रही हैं। इन सबका असर स्त्री–लेखन पर पड़ा है। नवीन युग की भारतीय स्त्री भी इस भार का अनुभव कर रही है, जो बाहर से हर क्षण को भरकर भीतर की हर साँस को खाली कर देता है। स्वतंत्रता सबके लिए जीने की शक्ति न दे सके तो मनुष्य के लिए प्रसाधन मात्र रह जाएगी और सबके लिए जीने की विद्युत सहानुभूति के जल में उत्पन्न होती है। आधुनिक युग, परतंत्रों और पीड़ितों के उत्थान का युग रहा है और उनके उत्थान से मानव–समाज के सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। यह निर्विवाद तथ्य सत्य है कि भारत पुरुष प्रधान देश रहा है और युगों–युगों से स्त्री पराधीनता की जो परम्परा चली आई है, उसके कारण स्त्रियों का जीवन कठिन और अवसादपूर्ण होता गया है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में भाँति–भाँति से स्त्री के आर्तनाद, विषाद और पीड़ा को उजागर किया गया है।
मृदुला गर्ग ने अपने कथा साहित्य में यह स्पष्ट किया है कि आज के परिवेश में स्त्री भी सामाजिक चेतना से पूर्ण हो रही है। अपनी सामाजिक भूमिका में पुरुषों से बराबरी का अधिकार माँग रही है और इस दिशा में वह संघर्षशील भी है। सामाजिक कुरीतियों का सबसे ज्यादा शिकार स्त्री वर्ग हो रहा है। उसमें समाजवादी चेतना आयी है, परन्तु सदियों से चली आ रही निरक्षरता के कारण वह इस दिशा में ही प्रयत्नशील हो पाती हैं। कहानियों में सामाजिक मूल्यों की सही लड़ाई का समर्थन किया गया है। ये कहानियाँ स्त्री के लिए समाज द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य–व्यवस्था के छद्म को गहराई से महसूस कराती हैं। अधिकांश कहानियाँ स्त्री के पक्ष में ये दर्शाती हैं कि सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में 'नैतिक–अनैतिक' के प्रश्न स्त्री को बार–बार अग्नि–परीक्षा के लिए खड़ा करते रहे हैं। ये कहानियाँ रूढ़ परम्पराओं, तत्वों और यथास्थिति वादियों को बेनकाब करती हैं।

मूल शब्द : स्त्री, जीवन, त्रासदी, उपन्यास, मृदुला गर्ग।

प्रस्तावना
आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री–चेतना और स्त्री–दृष्टि की चर्चा की शुरुआत भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में स्त्रियों की सक्रिय साझेदारी, पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से आत्म–सजगता तथा आलोचनात्मक दृष्टि के जागरण और आधुनिक हिन्दी साहित्य में रचनाकार के रूप में महिलाओं के आगे आने के साथ होती है। स्वाधीनता के बाद कुछ दिनों तक स्त्री–चेतना और स्त्री–दृष्टि की चिंता कमजोर होती दिखाई देती है। इधर हाल के कुछ वर्षों में हिन्दी साहित्य में बड़ी संख्या में रचनाकार और आलोचक के रूप में स्त्रियों के आने और सक्रिय होने के साथ एक बार फिर स्त्री–चेतना के महत्व की पहचान और स्वतंत्र स्त्री–दृष्टि की माँग जोर पकड़ने लगी है। हिन्दी में स्वतंत्र स्त्री–दृष्टि पर चर्चा के पीछे एक ओर सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर स्त्रियों की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले संगठनों और आन्दोलनों का विकास है तो दूसरी ओर पश्चिम में रचना और विचार के क्षेत्र में स्त्रीवादी दृष्टिकोण तथा चिन्तन के उभार का प्रभाव भी है।
मई 1993 के 'हंस' में मृदुला गर्ग ने स्त्री–चेतना के महत्वपूर्ण मुद्दे को उठाते हुए स्त्री–चेतना को लिंग, जाति और वर्ग से जोड़कर देखने का विरोध किया है। वे कहती हैं कि यह चेतना स्त्री–पुरुष दलित–गैरदलित सबमें हो सकती है। उनका सम्बन्ध वर्ग, वर्ण धर्म या लिंग से नहीं, दृष्टि से है, जो अनुभूति की ऐतिहासिक, सामाजिक और वैयक्तिक यात्रा में से विकसित होती है। आगे चलकर उन्होंने यह भी लिखा है – स्त्रीवादी लेखन का सम्बन्ध लिंग से नहीं, भाव बोध, जीवनदृष्टि और चेतना से है। इसलिए उनके अनुसार ''स्त्री–चेतना–सम्पन्न–कथा–साहित्य स्त्री–पुरुष दोनों रच सकते हैं।''[1]
मृदुला गर्ग की विचार प्रक्रिया में अनेक प्रकार की उलझनें हैं। एक ओर वे साहित्य को लिंग के आधार पर विभाजित करने का विरोध करती हैं और दूसरी ओर मर्द–आलोचना की आलोचना भी करती हैं। वे कई बार चेतना और दृष्टि को एक मानती हैं और कई बार दोनों में फर्क करती हैं। उन्होंने लिखा है कि चेतना का सम्बन्ध वर्ग, वर्ण, धर्म और लिंग से नहीं, दृष्टि से है। सवाल यह है कि क्या दृष्टि का वर्ग, वर्ण, धर्म, लिंग से कोई सम्बन्ध है या नहीं? जब वे कहती हैं कि दृष्टि अनुभूति की ऐतिहासिक, सामाजिक और वैयक्तिक यात्रा से विकसित होती है जब वे इस बात पर ध्यान नहीं देती हैं कि वह यात्रा वर्ग, वर्ण, धर्म और लिंग के रास्तों से ही गुजरती है। किसी रचनाकार या विचारक, यहाँ तक कि साधारण आदमी की विश्व दृष्टि को बनाने–बिगाड़ने में उसके वर्ग, वर्ण, धर्म और लिंग की अनेक रूपों में निर्णायक भूमिका होती है। जब मृदुला गर्ग यह कहती हैं कि स्त्रीवादी लेखक का सम्बन्ध लिंग से नहीं, भावबोध जीवन–दृष्टि और चेतना से है तब वे यह भूल जाती हैं कि किसी लेखक के भावबोध जीवन–दृष्टि और चेतना का निर्माण हवा में नहीं होता। वह जिस समाज में रहता है उस समाज के जीवन, संस्कृति और साहित्य के इतिहास से होता है जो पितृसत्तात्मक समाज लिंगभेद का जनक और पोषक है जो जन्म के पहले से मृत्यु तक स्त्री–पुरुष का भेद बनाए रखता है और स्त्री को

जीवन–भर प्रत्येक क्षण स्त्री होने का ज्ञान, पहचान और अनुभव कराता रहता है उसमें जीने वाले किसी भी व्यक्ति, खासतौर से किसी स्त्री का भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना का स्वरूप लिंग–भेद से मुक्त कैसे हो सकता है। सच बात तो यह है कि स्त्री और पुरुष–लेखन में भावबोध, जीवन–दृष्टि और चेतना के स्तर पर जो फर्क होता है वही उनकी रचनाशीलता में भी व्यक्त होता है।

स्त्री : समय के साथ, समय से बाहर

साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं में 'बोल्डकरार' लेखिका के नाम से सुपरिचित मृदुला गर्ग के उपन्यासों का कथ्य इतना कठिन है कि सामान्य पाठक चौंक जाता है। जीवन के प्रत्येक पहलुओं पर ज्यादा जोर देकर पाठक को समझाने का प्रयास लेखिका ने किया है। स्त्री–पुरुष शोषण, प्रणय प्रसंग, कामवासना, विवाह समस्याएँ, समान अधिकारों की पक्षधरता, यौन–सम्बन्धों की उन्मुक्तता, चरित्रों का आकलन, इन्सान का विविध रूप, परिवर्तित मूल्य–दृष्टि, उन चरित्रों का विकास, अधूरा प्रेम आदि सब तरीकों से लेखिका ने जाँच–पड़ताल करके उन पर खुलेआम लिखने की कला को अपनाई है।

'उसके हिस्से की धूप' मृदुला गर्ग का यह सर्वप्रथम उपन्यास है। उपन्यास की कथा अत्यंत समान गति से निरंतर चलती हुई दिखाई देती है। बारिश के मौसम में गिरती धूप के समान तन–मन को गुदगुदी दिलाती रूठाती हँसाती–सी आगे बढ़ती है। उपन्यास की नायिका मनीषा बेंगलौर के सेण्ट जोसेफ कॉलेज में हिन्दी की प्राध्यापिका के रूप में काम करती रहती है। जितेन के साथ उसका विवाह हुआ रहता है। जितेन फैक्ट्री में मैनेजर के रूप में कार्यरत रहता है। वह हमेशा घर–परिवार में उदासीन रहता है। परन्तु जितेन समय को बहुत ही महत्व देता है। वह समय को पके फल के समान दोनों हाथों से थामता था और निचोड़–निचोड़कर उसका इस्तेमाल करता है। मनीषा को साहित्य क्षेत्र में उपन्यास कहानियाँ लिखने की बहुत बड़ी शौक है। अच्छी कहानियाँ लिखकर पत्रिकाओं को भेजती रहती है। छपने के बाद वह पाठकों से प्रशंसा भी पाती है। मनीषा की सहेली सुधा सिद्धप्पा उसी कॉलेज में अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका है। वह मनीषा के उदासीन जीवन को देखकर मधुकर नागपाल का प्रवेश करवाती है। मनीषा मधुकर की मित्रता में घुलमिल जाती है। दोनों एक–साथ होटलों में खाना–खाने जाना, घूमने–फिरने, ऐश करने जाते रहते हैं। इससे मनीषा का जीवन नव–यौवन की उन्मत्तता में बदलने लगी थी। मित्रता घनिष्ठता में पलट गई थी। यही घनिष्ठता ने मनीषा के दिल को जीत लिया था। उधर जितेन के प्रति उसकी उदासीनता, घृणा और तिरस्कार में बदलने लगी थी। एक दिन शाम में मधुकर अपनी स्कूटर पर मनीषा को छोड़ने घर गया, तो वहाँ जितेन मद्रास जाने के लिए अपना लगेज कार में रखता रहता है। मनीषा, मधुकर से जितेन का परिचय करवाती है। दोनों एक दूसरे से बातचीत करते अंदर ड्राइंग रूम में चले जाते हैं और मनीषा चाय बनाने रसोई घर में जाती है। वहाँ पूँजीवाद अर्थशास्त्र को लेकर दोनों में वाद–विवाद होता है। मधुकर क्रोधवश बिना काफी पिये वहाँ से चला जाता है। मनीषा अचानक जितेन के साथ मद्रास जाने की बात उठाती है। क्यों मधुकर उसे बहुत ही गहरे रूप से चाहने लगा था और जितेन के जाने के बाद कहीं कोई हादसा न हो जाय, सोचकर वह मन ही मन में डरने लगती है। जितेन कहता है– ''मैंने कहा न? वह जरूरत से ज्यादा भावुक है। अच्छा चलता हूँ।''

"This social and political experience taught him that the subjection and irrationism of intellectual bourgeous i.e., ... are hallucination obscure reality and instant demand of true humanism"[2] कहकर वह मद्रास चला जाता है।

जितेन के जाने के बाद मधुकर और मनीषा दोनों आजाद पंछी के समान फ्री हो गये थे। कॉलेज छूटने के बाद दोनों ठट्ठा–मस्ती में झूमने लगे और रंगरेलियों में डूबने लगे थे। मधुकर मनीषा को आग्रह करने लगा कि वह जितेन को छोड़कर उससे शादी कर ले। जब जितेन मद्रास से लौट आया तो मनीषा ने तलाक की बात उठाना चाही, परन्तु उसकी हिम्मत नहीं होती थी। उधर, जितेन से तलाक माँगने के लिए मधुकर मनीषा पर जोर डालता रहता है। वह रात मनीषा के लिए निर्णायक थी। उसे दो में एक फूल चुनना जरूरी था। जितेन का मूड न रहते हुए भी वह बता देती है। इसके सम्बन्ध में जितेन कहता है – ''आकर्षण ऐसी चीज है, जो वक्त के साथ टिकती नहीं। तुम जानती हो मैं उतने तंग ख्यालों का आदमी नहीं हूँ। मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ भी गुजरा हो तो उसे भुलाया जा सकता है। इसमें तलाक की जरूरत नहीं।''[3] जितेन का लाख समझाने पर भी वह अपने निर्णय पर ही अटल रहती है। सुबह प्रातः उठने पर जितेन को मनीषा ने बता दिया कि वह यहाँ से बम्बई अपने मायके जायेगी। वहाँ से दिल्ली। दिल्ली में ही मधुकर के साथ रहने का निर्णय सुनाती है। क्योंकि मधुकर के लिए बंगलौर में रहना असंभव–सा रहता है। परित्यक्त पुरुष समाज के लिए व्यंग्य का विषय बन जाता है। वैसे जितेन के लिए भी स्थिति असहनीय हो जायेगी यही सब सोचकर दोनों इस निर्णय पर आये रहते हैं। दिल्ली जाने से पहले मधुकर को मनीषा सहवासी होने पर भी उसे तलाक की प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। मधुकर वहाँ अर्थशास्त्र का अध्यापक बन जाता है और मनीषा सिर्फ लेखिका के रूप में रह जाती है। इसी समय उसकी एक कहानी संग्रह 'क्षणभंगुर' प्रकाशित हो गया था।

स्त्री : परिधि के भीतर और परिधि के बाहर

स्त्री जागरण की दृष्टि से तो साहित्य उसके स्वत्व और व्यथा का समर्थ व्याख्याकार ही रहा है। कवियों के कंठ में भारत की जय ही नहीं गूँजी, स्त्री की जय भी ध्वनित हुई है। कथाकारों की आँखों में भारतमाता की परवशता पर ही आँसू नहीं आए हैं, विवश स्त्री के बंधनों पर भी आए हैं। बंकिम, रवीन्द्र, शरत, मैथिलीशरण, प्रसाद आदि ने भारतीय स्त्री की महिमा की परिधि में उसकी युगांतर दीर्घ मर्मव्यथा को वाणी दी है। इसी से उनके साहित्य में गंगा यमुनी आभा है। महिलाओं ने इस रचनापर्व में कितना सहयोग दिया है, यह हेमंतकुमारी चौधरानी, सरोजिनी नायडू, सुभद्राकुमारी चौहान, तोरणदेवी आदि की रचनाओं से प्रकट है। आर्थिक दृष्टि से आज की स्त्री को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है उसके विस्तार की असंख्य संभावनाएँ हैं। जैसे–जैसे उसके कर्मक्षेत्र की लक्ष्मणरेखा मिटती जाती है वैसे–वैसे वह नवीन कर्तव्य सँभालने की क्षमता प्राप्त करती जाती है। पर समाज की स्थिति के कारण, यह आर्थिक स्वावलंबन भारतीय स्त्री को पारिवारिक सहानुभूति से वंचित कर अकेला बनाता जाता है।

पुरुष अकेला हो सकता है, परन्तु स्त्री अनेक सम्बन्धों की केन्द्र होने के कारण एक संस्था के समान है। उसके लिए अकेलापन एक प्रकार का निर्वासन दण्ड बन जाता है और उससे तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। उल्लास के साथ शक्ति जितनी गरिमापूर्ण हो जाती है, क्लांति या थकावट के साथ उतनी ही दयनीय। इस सम्बन्ध में पश्चिम की स्त्री का जीवन भी द्रष्टव्य है। उसके पास शिक्षा है, स्वतंत्र जीवन है, विस्तृत कर्मक्षेत्र है, किन्तु गृह की इकाई टूट गई है और इस टूटने की रिक्तता ने उसके मनोबल को भी

तोड़ दिया है। आज वह जिस आत्मघाती उन्माद में क्रियाशील है, वह मानसिक निष्क्रियता का परिणाम है। भौतिक सुविधाएँ सुलभ करने वाले कर्मक्षेत्र ने उसके जीवन को अपने भार से ही चूर–चूर कर डाला है।

समाज में प्रचलित विभिन्न रूढ़ियों को स्त्रियाँ अपने सामाजिक सन्दर्भों में, पारिवारिक पृष्ठभूमि में अपनी क्षमता के अनुसार तोड़ती हैं, वे उनसे मुक्ति पाना चाहती हैं, उन पर तरह–तरह से प्रत्यक्ष रूप से प्रहार करती हैं। अज्ञेय अपने निबंध 'हमारे समाज में स्त्री' में कहते हैं कि ''स्त्री को हमेशा रिश्ते के, किसी पुरुष के माध्यम से देखना समाज को पुरुष संचालित मानने का एक विस्तार है। स्त्री अपने आप में कुछ नहीं, उसका अपना व्यक्तित्व कुछ नहीं है, उसके लिए केवल कर्मों और कर्तव्यों का एक समूह है, एक रोल जो इस दृष्टि से निर्धारित होता है और क्योंकि यह पुरुष समाज बड़ी आसानी से स्त्री के व्यक्तित्व की सत्ता को ही नकार जाता है। इसलिए आज उस कथित पूजा भाव का भी कोई अर्थ नहीं रहता। ..... सच्चे अर्थों में पूज्य वह स्त्री हो सकती है जिसके व्यक्तित्व को समाज ने एक स्वंतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए समाज के लिए अपने को सामने करने की और अपने मूल्यों को चुनौती देने की बात उठती है।''[4] जब स्त्री समाज का विरोध करती है तो उसे उसकी कीमत चुकानी पड़ती है जो कीमत नहीं चुकाती, उनके विद्रोह में गहराई नहीं आ पाती। वह सतही रह जाता है, क्योंकि अन्तर्द्वन्द्व उन्हें मथता रहता है। स्त्रीवादी कथाकार उन सामाजिक प्रथाओं का विरोध करते हैं जो कि समान अधिकार भावना की बजाय, अपने अधिकारों को त्यागने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। यह भावना लड़कियों में खास तरह का संस्कार विकसित करती है। ये संस्कार बाद में रूढ़ रूप ले लेते हैं।

मृदुला जी का 'मैं और मैं' झूठ की दुनिया पर आधारित उपन्यास है। कितना आसान है एक के बाद एक झूठ बोलते चले जाना और कितनी खूबसूरत पारदर्शी और रंगबिरंगी है झूठ की दुनिया। उसके सामने सच क्या है, एक ठोस, मटमैला, खुरदुरा पत्थर। झूठ की दुनिया में उड़ान भरने वाला, कल्पना के गुब्बारे में सुई चुभाकर पथरीली धरती पर क्यों उतरेगा? अतः लेखक, लेखन और वास्तविक जिन्दगी में सम्बन्धों की पड़ताल में, झूठ और सच के सापेक्ष पारदर्शी परदे के पीछे मायालोक के रहस्य को दिखाता मृदुला गर्ग का उपन्यास 'मैं और मैं' सृजन और सर्जक के दोहरेपन से उत्पन्न फरेब का संसार है।"[5] झूठ के इस नाटक में फंसते चली जाने वाली माधवी भी अंत में कौशल की हर जुंबिश से वाकिफ होकर, झूठ के व्यापार में मजा लेने लगती है और कह उठती है "वाह, मेरे दोस्त अब तुम और मैं एक ही दायरे के अन्दर कैद है। क्या झूठ है और क्या सच? क्या यथार्थ है और क्या नाटक? क्या है वास्तविकता और क्या कल्पना और फरेब के बल पर खड़ा किया गया फंतासी का संसार?"[6]

आलोच्य उपन्यास में मृदुला गर्ग ने लेखक के भीतर की दुनिया में झांकने का प्रयास किया है। दो लेखकों–एक स्त्री लेखक और दूसरा पुरुष लेखक के 'मैं और मैं' या अहं की टकराहट का मार्मिक अंकन उपन्यास में है। यह टकराहट केवल अहं की ही नहीं है बल्कि सम्पन्नता और विपन्नता के बीच की भी है, वर्गचेतना की है। "इस तरह अहं और अहं के टकराव की यह कहानी अपने आप में अत्यन्त रोचक और रोमांचक है। यह समाज के उस तबके का चित्र खींचती है जो दूसरे आदमी को बेवकूफ बनाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगा रहता है। इस महाखुर्राट, चलते पुर्जे और हवाओं से बात करने वाले मनुष्य से सच उगलवाना कितना कठिन है। जो उसके जाल में एक बार फंसा उसका जीवन यकीनन दूभर हो जाता है। कौशल उस वर्ग का प्रतीक है जो किसी सहृदय इन्सान की मानवीय भावनाओं का गलत इस्तेमाल करने से भी नही चूकता।"[7]

इस प्रकार मैं यह कह सकती हूँ कि स्त्री होने का अनुशासन ही स्त्री को अपने स्त्री होने की गौरवानुभूति नहीं होने देता। इस तथ्य को वह सामान्य भावभूमि पर नहीं ले पाती और न ही ले सकती है, उसकी जैविक संरचना उस पर सदैव एक प्रकार का दबाव डालती रहती है और वह उस अनुशासन से मुक्त नहीं हो पाती। प्रयास करती है अलग–अलग ढंग से परिधानों के माध्यम से उन अनुशासनों को तोड़ने की। परिधानों के विभिन्न रूप, उनकी डिजाइन, उनके रंग–ये इस तथ्य को सिद्ध करते हैं कि उसे जैविक अनुशासनों की सत्ता स्वीकार करने में कहीं न कहीं कुछ समझौते करने पड़े हैं, इसलिए पूरी दुनियाँ में स्त्रियों के परिधानों की कोई मिसाल नहीं। तात्पर्य यह है कि उसने इस बहाने अनुशासन का शासन तोड़ने की कोशिश की है और आज भी करती आ रही है। इस समय तक स्त्री के मन की कल्पना में पुरुष से आगे बढ़ने की चाहत प्रबल हो रही थी। इसी भावना से वह दुखी थी। ईदा तामेल ने लिखा है जिलस काल में स्त्री अत्यधिक स्वतन्त्र हो जाती है तभी वह सबसे अधिक अवसादग्रस्त भी रहती है। आज स्त्रियाँ प्रत्येक बात में पुरुषों के समान ही बनना चाहती है। इस स्वतंत्रता में स्वावलम्बी होना उनकी फितरत होने लगती है। अपनी कुशलता का परिचय देकर स्वयं सिद्ध हो जाना चाहती हैं। इस दृष्टि से मृदुला गर्ग का उपन्यास साहित्य अधिक सक्रिय एवं विवेचनात्मक रहा है।

स्त्री : जैविकता के नये अक्षांश

मृदुला जी का साहित्य उनके चिंतन से प्रसूत है। पाश्चात्य प्रभावों से युक्त होकर मृदुला जी ने स्त्री के तन और मन दोनों की स्वतन्त्रता को आवश्यक माना है। उनके कहानी और उपन्यास साहित्य के अवलोकन से यह दृष्टिगत होता है कि नैतिकता और परम्परा दोनों से हटकर उनके स्त्री पात्र अपनी स्वच्छन्द विचारधारा के कारण अपने देहधर्म की ईमानदार स्वीकृति देते हुए अपनी दैहिक, जैविक आवश्यकताओं को प्रधानता देते हैं। यह लेखिका के चिन्तन का ही परिणाम है। एक रपट में मृदुला जी की स्त्री–स्वतन्त्रता की धारणा के बारे में कहा गया है– "मृदुला जी को देह की स्वतन्त्रता में कुछ भी पश्चिमी नहीं लगता है। क्या हम पश्चिमी भावबोध से प्रभावित नहीं हैं। स्त्री की देहयात्रा दरअसल तार्किक है। देह की आजादी के साथ ही औरत का मन, भाव, चेतना भी होती है। यदि वह नहीं है तो पुरुष के साथ उसके संसर्ग में सुख नहीं है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास की चर्चा उपन्यास के एक प्रसंग में तीन चार पृष्ठों के विवरण के कारण अधिक हुई है। इन पन्नों में एक दुःस्वप्न के रूप में लेखिका के मनु के उरोजों का जो बिम्ब खड़ा किया है उसके कारण उपन्यास की काफी चर्चा हुई है। उपन्यास में महेश के साथ बिताए गए संभोग के क्षण दुःस्वप्न की तरह मनु के मानस पटल पर अंकित है। मनु स्त्री–पुरुष के रिश्ते को सिर्फ शरीर भोग तक ही सीमित नहीं मानती। मनु महेश के उरोज प्रेम और भोग की प्रक्रिया का दुःस्वप्न देखती है। बाथरूम का दृश्य भी महेश की शारीरिक रुचि को दिखाता है। मनु इससे मुक्ति पाना चाहती है। मनु के पृष्ठ 110 से 113 तक के चार पृष्ठों के नर–स्त्री के प्रणय–सम्बन्धों के दृश्य अंकन में अत्यधिक खुलापन है। नायिका की अपने शरीर के प्रति आसक्ति, महेश का उन्माद तथा मनु के उरोजों से खेलना, चुंबन, रति–वर्णन आदि मनुष्य की कामपिपासाओं का बेझिझक अंकन लेखिका ने किया है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं–"वाकई मेरा शरीर अभी जवान है... शायद सुन्दर भी–हाँ जरूर शरीर का सौन्दर्य जवानी से होता है।" (पृष्ठ 110)

उसी प्रकार "अगर मेरा शरीर एक उरोज होता–एक दीर्घकाय, विशाल, गुदगुदा उरोज। ग्लोब की तरह गोल। महेश उस पर पसर जाता। उसके हाथ पाँव और ओंठ एक साथ उससे खेलते, उसे मसलते, उसे चूमते। (पृष्ठ 11) मनु की चुंबन अनुभूति का वर्णन कुछ इस प्रकार है – "अब उसे ओंठ मेरे ओंठ पर हैं। अपनी जबान से उसने बंद दरवाजा खोल लिया है और मेरी जबान पर कब्जा कर लिया है। मेरी जबान के तन्तु चिनचिना रहे हैं... मैं सिर्फ जबान हूँ।" (पृष्ठ 112) और मनु–महेश के शारीरिक मिलन का शब्दांकन कुछ ऐसा है–"महेश ने मेरी देह में प्रवेश कर लिया है। पुरुष और स्त्री का संभोग कुछ नहीं है यह–महज एक गढ़े को भर देने की उत्कट लालसा, जो हर मानव को विरासत में मिलती है।" (113) इन सारे वर्णनों को दृष्टि में रखते हुए अश्लीलता का मुद्दा 'चित्तकोबरा' के संदर्भ में उठाया गया है। सांकेतिक और प्रतीकात्मक ढंग से भी लेखिका अपनी बात कह सकती थी। समीक्षकों की दृष्टि में उपन्यास को चर्चित करने तथा उसकी बिक्री बढ़ाने के लिए ही लेखिका ने मनु के दुःस्वप्न को जरा गहरा रंग दिया है तथा प्रस्तुत उपन्यास 'बेस्ट सेलर' बन से इसीलिए शायद लेखिका ने उपन्यास की थीम प्रेम और संभोग से जोड़ दी है। एक समीक्षक के कथनानुसार–"मुदुला गर्ग ने 'चित्तकोबरा' के रूप में हिन्दी के पाठकों–आलोचकों को एक मसालेदार और तीखी कृति दी है और चटखारे लेकर मीमांसा करने का मौका भी।"[8]

मृदुला गर्ग ने स्वदेश लौटे भारतीयों की मानसिक स्थिति के साक्षात्कार पर प्रभाव कथा–साहित्य का सृजन किया है। लेखिका ने अपनी कहानियों में प्रायः अमरीका में बसे भारतीयों को ही लिया है। लगता है अमरीका के प्रति लेखिका का विशेष आकर्षण रहा है। इंग्लैण्ड, कनाडा, दुबई, चेकोस्लोवाकिया आदि देशों का वर्णन उनकी कहानियों में नहीं है। पश्चिम के प्रति भारतीयों के मन में आकर्षण क्यों निर्माण होता है? इसका कारण यह है कि जब 1991 में सोवियत राष्ट्र संघ के विघटन ने अमरीका को विश्व के एकल सत्ता केन्द्र की तरह स्थापित कर दिया तब से न केवल आर्थिक, सैनिक, व्यावसायिक और पर्यावरणीय क्षेत्रों में उसका प्रभुत्व बढ़ा बल्कि विमर्श और संस्कृति के क्षेत्र में भी उसकी दादागिरी जम गई। परिणामतः भारतीयों का अमरीका के प्रति आकर्षण निर्माण होने लगा। हमारे देश से अमरीका पलायन करने वाले शिक्षित नौजवान जिस तरह शरणार्थी मानसिकता के तहत उपभोक्तावाद और हीन भावना से ग्रस्त रहते हैं, वह अमरीकी सोच के वर्चस्व को दर्शाता है। सन् 1991 में सोवियत राष्ट्र संघ के विघटन की राजनीतिक घटना का मृदुलाजी के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा और नये चिन्तन और भावबोध के परिणामस्वरूप इस तरह की कहानियाँ लिखी गई। इन देश निकालों पर या अमरीकी संस्कृति से प्रभावित होकर पलायन करने वाले भारतीयों पर बेहतरीन कहानियँ मृदुलाजी ने लिखी हैं–'उर्फसैम', 'छत पर दस्तक', 'बर्फ बनी बारिश', 'बड़ा सेब काला सेब' आदि। लेखिका इन कहानियाँ में पश्चिमी सभ्यता के 'वस्तुकरण' पर प्रकाश डालती है। यहाँ प्रेम का कारण तो वही है जो अक्सर दिखता है, अर्थात् स्त्री का रूप सौन्दर्य और मृदुला। उसके साथ ही पुरुष की शारीरिक बलिष्ठता, पौरुषगत अन्य विशेषताएँ आदि। परन्तु अनुभव के सवाल जो होते हैं, वे प्रत्येक में अलग और उनकी अपनी वैयक्तिक होती है। जब जैनी को मनु और रिचर्ड के प्रेम प्रकरण का पता चलता है तब जैनी और रिचर्ड में स्वाभाविक ही ईर्ष्या जागती है। लेकिन लेखिका का उद्देश्य सिर्फ कथा कहना नहीं है। उसका उद्देश्य तो उस ताजगी अनुभव को पकड़ना है। जिससे प्रेम करने वाले व्यक्ति गुजरते हैं। 'चित्तकोबरा' को चर्चित और विवादग्रस्त होने के लिए यही एक अनुभव ही काफी लगता है। यह अनुभव सामान्य अनुभव नहीं है। इसमें मानसिक और शारीरिक दोनों स्तर के अनुभव हैं। मनु और रिचर्ड के बीच का अनुभव मानसिक और शारीरिक सम्बन्ध, प्रेम का सम्बन्ध है। इसमें कवि हृदय की गुंजन है, कविता है तो इसे गीति के निकट ले जाती है।

पूरे उपन्यास में इसी अनुभव का चित्रण है। अनुभव का दूसरा स्तर है, जो केवल शारीरिक होता है। स्त्री–पुरुष के शारीरिक स्तर का जैविक अनुभव जो होता है, इसे प्रेम नहीं कह सकते। इसे कोई भी स्त्री उस पुरुष के साथ अनुभव कर सकती है, जिससे वह प्रेम नहीं करती है। ऐसे सन्दर्भ में वह केवल मादा होती है, महज शरीर मात्र। इस अनुभवयुक्त प्रेम के बारे में डॉ. मूलचन्द्र गौतम लिखते हैं – ''प्रेम व्यक्ति कर सकता है, जीव नहीं। प्रेम मन की आवश्यकता है तन की नहीं। प्रेम में मन और तन साथ–साथ होते हैं, जबकि यौन–क्रिया में केवल शरीर क्रियाशील होता है।

मृदुलाजी की खूबसूरत कहानी 'उर्फ सैम' है। प्रस्तुत कहानी में अमरीका में रहते हुए विदेशियों से प्राप्त उपेक्षा के कारण बौनापन अनुभव करने वाले तथा बुढ़ापे में भारत लौटने की चाह रखने वाले युवक सावन प्रताप सिंह (उर्फ सैम) की मानसिकता और व्यथा का अंकन हुआ है। वह दिल्ली में बसे अपने संयुक्त परिवार में पुनः लौटना चाहता है। यह मानसिकता कवेल सावन प्रताप सिंह की ही नहीं बल्कि विदेशों में रह रहे सभी भारतीयों की है। वे चाहकर भी मन से विदेशी नहीं बन पाते। कहानी लेखिका अपने इस कहानी के बारे में स्वयं लिखती हैं–"उर्फ सैम कहानी अमरीका में बसे भारतीयों के बारे में है। जब अमरीका में मैंने इसका पाठ किया तो अनेक सैम बने भारतीयों ने कहा कि यही उनका सच है।"[9]

स्त्री जैविकता के नए अक्षांश के परिप्रेक्ष्य में मृदुला गर्ग का कथा साहित्य जटिल गुत्थों के रूप में अवतरित हुआ है। पुरुष सत्ता, स्त्री के सामने आपने आपको अत्यन्त क्षुद्र अनुभव करने लगी है। आज समय के समक्ष राजनीतिक स्थिति में स्त्री–पुरुष के नेतृत्व में समान दिनचर्या ही बदल गई। उनमें स्वार्थ–वृत्ति इतनी अधिक पनप रही है कि उन्हें औचित्य–अनौचित्य का विवेह ही नहीं रहा है। कोई नेता यह नहीं कहता कि हम तुम्हारे बुद्धि और विवेक के विकास के लिए यह कार्य कर रहे हैं, यह नहीं कहता कि हम तुम्हारे संस्कारों को परिवर्तित कर देंगे, यह नहीं कहता कि जाति–वर्ग मिटाकर एक राष्ट्र एक समाज का निर्माण करेंगे कहते यह है कि 'जनता धोती' पहन कर हमें वोट दो... नहीं तो आधी रात के समय, सूने में उनकी निर्मम पिटाई, अनाचार, अत्याचार आदि न जाने कितनी दुर्घटनाओं का जन्म और हम सब हैं कि खुली आंखों से सब कुछ देख रहे हैं। ऐसे समाज में स्त्रियों को चाहिए कि अपने कल्याण, अपने अधिकार के लिए भी न मांगे। चाहे तो, संगठित होकर उनके अधिकार उन्हें स्वयं मिल जायें।

स्त्री जीवन फैण्टेसी, स्वप्न और वास्तविकता

कभी पूर्ण पुरुष की आकांक्षाओं में स्त्री जीवन विवाहित होने के उपरान्त भी अपनी दमित इच्छाओं के कारण फैण्टेसी या कल्पना लोक में ही उस पूर्ण पुरुष के साथ विचरण करती है, जिसके मन को बूझ लेना बड़ा मुश्किल होता है। इस परिवेश में युवक की जीवन संगिनी या प्रेमिका के संबंध में अनेक अभिलाषाओं से परिपूर्ण होकर अपने मन में विविध स्वप्न संजोते हैं और कल्पना लोक में विचरते रहते हैं। युवक और युवतियाँ अपने मनःस्थितियों और दशाओं से प्रणयानुभूति में खो जाते हैं और परिणामतः दोनों के जीवन में गोलगप्पे पकने लगते हैं। मृदुला गर्ग एक स्त्री होने के नाते केवल स्त्रियों की ही प्रणय भावनाओं को अनुभव कर सकी है। उन्होंने स्त्री के रूमानी भाव बोध की अनेक कहानियाँ अपनी समर्थ लेखनी से लिखी हैं जिनमें नायिकाओं की अपने प्रेमी के मिलन के

लिए आकुल–व्याकुल स्थितियों का या मिलनोत्कंठा का, निराशा का, मोहभंग का चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से उनकी 'झूलती कुर्सी', 'ग्लेशियर से', 'चकरघिन्नी', 'विलोम', 'अक्स' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

कहानी की नायिका शेफाली अपनी बाल्कनी में स्थित 'झूलती कुर्सी' में बैठकर अपने प्रेमी का इंतजार करती है। दिल्ली जैसे महानगर की तारकोल की सड़क पर आता जाता आदमी उसे दूर से दिखाई पड़ता है। उसकी चाल, उसका व्यक्तित्व, उसके कपड़े नायिका के लिए इतने जाने पहचाने हैं कि वह धोखा खा ही नहीं सकती। बड़ी बेसब्री से उसका इंतजार करती उसकी कुर्सी अपनी लय पर झूलती रहती है। उसके प्रेमी ने उसे टेलीफोन करके रैम्बल होटल में बुलाया है। जो एक सार्वजनिक स्थान है जहाँ खूब चहल पहल और भीड़ रहती है। प्रेमी के निमन्त्रण पर वह उस स्थल पर पहुँच तो जाती है पर काफी प्रतीक्षा उसे करनी पड़ती है। प्रतीक्षा के इन क्षणों के दौरान वह कॉफी पीती है। उसे वहाँ उसकी एक सहपाठी सहेली नीरा तथा मित्र मोहन भी मिल जाता है परन्तु उसके इंतजार की घडियाँ समाप्त नहीं होती, शेफाली को लगता है शायद उसने होटल का नाम गलत सुना हो। उसे अपने प्रिय पर पूरा भरोसा है, वह जरूर आएगा। परन्तु प्रतीक्षा में थककर, हारकर वह पुनः अपने घट लौट आती है। तब उसका प्रेमी उसे फोन पर बताता है कि वह पूरे दो घंटे रैम्बल में ही उसका इंतजार करता रहा था परन्तु प्रेमिका उसे देख नहीं पाती और पुनः प्रेमी को घर आने का निमन्त्रण देकर शेफाली फिर झूलती कुर्सी पर बैठकर उसका इंतजार करने लगती है।

इस प्रकार सम्पूर्ण कहानी में एक प्रेमिका की आकुल मानसिकता (प्रेमी से मिलने की), हड़बड़ी देखकर आश्चर्य होता है कि प्रेमी के वहाँ मौजूद या उपस्थित होने पर भी नायिका उसे कैसे नहीं देख पाई? यह एक प्रकार से प्यार का पागलपन ही कहा जा सकता है। ऐसा भी जीवन में हो सकता है। संभव है कि धुन में सामने का व्यक्ति भी दिखाई न दे, यह प्यार का जुनून होता ही ऐसा है। मृदुला गर्ग की प्रस्तुत कहानी के बारे में बलराम का यह वक्तव्य सार्थक है–"महानगर में मिलनोत्कंठा में आकुल–व्याकुल स्त्री की भावधारा में बहती कहानी 'झूलती कुर्सी' का यह निष्कर्ष क्या पाठक कभी भूल पाएंगे? सच्चा एकान्त सिर्फ भीड़ के बीच मिल सकता है। वहाँ कौन देखेगा हमें? इतने लोग होंगे। हर कोई साथियों के संग। सब व्यस्त अपने अपनों में मस्त। कहीं अकेले में जाकर बैठो सुनसान सड़क के किनारे या निर्जन मैदान में, तो कोई सिरफिरा उधर निकल ही आता है। हमें देखकर चौंकता है और देखता ही चला जाता है। एक अजूबा है हम उसके लिए। कानों कान दुहराने लायक, अपवाद, वह भी कोई एकान्त हुआ। नहीं भीड़ के सिवा एकान्त संभव ही नहीं।"[10]

कहानी 'ग्लेशियर से' में एक फेंटेसी है जिसमें मिसेज दत्ता अपनी चाहत और इच्छा को एक फेंटेसी के रूप में गढ़कर अपने एक मनचाहे, कल्पित पुरुष, एक पठान के साथ ग्लेशियर देखने जाती हैं। उसके साथ जूड्म नीचे जूड्म ऊपर जाकर जिन्दगी का हसीन समाँ देखती है और फिर बेहोश हो जाती है। मनोवैज्ञानिक प्रणाली को अपनाकर लेखिका ने नायिका के प्रकृति प्रेम तथा प्रणय भावों का अंकन किया है जो ग्लेशियर का अद्‌भुत वातावरण देखकर अपने आप को भूलकर अतीत से चली जाती है। होश में आने के बाद, वर्तमान में लौटकर जब अपने पति के साथ घर लौटती है तो उसके घर के कालीन पर जमी धूल उसकी उदास मनःस्थिति को प्रकट करती है। शादी के बाद मिसेज दत्ता और उसके पति मि. दत्ता सोनमर्ग का ग्लेशियर देखने जाते हैं। जहाँ देश के कोने–कोने से लोग आए हुए हैं। मिसेज दत्ता दो मील दूर स्थित ग्लेशियर पर चलने के लिए मि. दत्ता के थके होने के कारण इंकार करने पर भी, शाम के साढ़े पाँच बजे अकेली ही निकल जाती हैं। ग्लेशियर का वातावरण बड़ा ही उन्मादपूर्ण है। वैसे यह शाम का वक्त ग्लेशियर की ओर जाने का नहीं है पर वह बदहवास होकर बढ़ती चली जाती है। अतीत की स्मृतियों में वह खो जाती हैं। उसके मन में कई प्रकार की भावनाएँ उभर आती है। वह सूरज की किरणों से पिघले बर्फ की नदी में उतरकर अपने आप को बहा देना चाहती है। परन्तु उसे ठोस धरती से इतना लगाव है कि वह नदी में नहीं उतर पातीं। इतने में एक पठान उसे आवाज लगाता है, नदी पार कराने की बात कहता है। इन्कार करने पर अन्त तक उसका पीछा नहीं छोड़ता। पठान की नीली आँखों से आकृष्ट होकर तथा उसके चुम्बकीय उन्माद का स्पर्श पा लेने के बाद मिसेज दत्ता हाँ कह देती हैं। पठान के उसे लेकर चल पड़ने पर उसके पैरों तले की जमीन खिसक जाती है। यह पठान मिसेज दत्ता को लेकर पानी में कूद पड़ता है। विस्मय और उत्तेजना से युक्त मिसेज दत्ता पठान की बाँहों में घिरकर नदी पार करती हैं और दोनों ग्लेशियर के पास पहुँच जाते हैं। पर मिसेज दत्ता को ग्लेशियर दिखाई नहीं देता।

स्लेज गाड़ी पर पठान के पीछे बैठी मिसेज दत्ता पठान की सतरंगी आँखों, गुलाबी चेहरे, काली दाढ़ी और मोहपाश में बांधती, धोखा देती आँखों से प्रभावित होकर सोचने लगती हैं–"उफ, इतना खूबसूरत भी कोई हो सकता है... इंसान? ... यह आदमी है या जुनून की जलती मशाल?"[11] वह उस पठान की कमर को टांगों से घेरकर कंधों पर हाथ रखे उसके पीछे बैठक जाती हैं और जूडम नीचे–जूडम ऊपर। इतनी तेज गति से कि हवा भी पिछड़ जाए। यह पठान उसे मौत का फरिश्ता लगता है जिससे उसे जिन्दगी का हसीन नजारा दिखाया। बेहोश अवस्था में लुढ़कता हुआ मिसेज दत्ता का शरीर बर्फ की सतह पर आ जाता है। मि. दत्ता उसे खोजते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं। उसके सुन्न हाथों को गरमी दी जा रही है। घोड़े पर बैठकर वापस होटल की तरफ लौटती हुई मिसेज दत्ता को मानो पठान कह रहा है–"कल शाम आना मैं तुम्हें स्लेज गाड़ी दिखलाऊँगा।' इस प्रकार नायिका के प्रणयी रोमांटिक भावों की, उसके अन्तःकरण की दमित भावनाओं की, पूर्ण पुरुष को पाने की उत्कट इच्छा की, सांकेतिक बिम्बात्मक अभिव्यक्ति कहानी में हुई है।

विनीता के माध्यम से लेखिका ने एक संवेदनक्षम स्त्री की छटपटाहट और मानसिकता को स्पष्ट किया है तथा अपने पति के प्रति प्रणय भावों को प्रमुख मानकर, आदर्श सपनों में जीती एक स्त्री कैसे वास्तविक यथार्थ के धरातल पर आ जाती है, इसे भी बखूबी दिखाया है। विलोम – नायिका के प्रणय भावों का, रोमांटिक भाव बोध का उदात्तीकरण सामाजिक चेतना में दिखाकर लेखिका ने कहानी को एक उच्च आयाम प्रदान किया है। प्रेमी की उपस्थिति में प्रणय भावों का उद्दाम आवेग अनुभव करने वाली नायिका उसकी अनुपस्थिति में सामाजिक बोध से युक्त हो जाती है तथा प्रेमी की मंजिल की ओर चल पड़ती है। उसकी मानवीय संवेदना प्रखर हो उठती है। सोलह साल बाद दिल्ली से बंबई शहर में आने वाली नायिका के लिए बंबई जाना पहचाना शहर है। सोलह वर्ष पहले वह बंबई में पैडर रोड पर बने कंपनी के मकान अजूमल मैशंस में रहती थी। आज इतने वर्षों बाद बाम्बे सेंट्रल पर उतरकर वह अपने आपको अजनबी महसूस करती है। बंबई के गेटवे ऑफ इंडिया से उसकी विगत स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। यहीं बैठकर उसके प्रेमी के साथ उसने कितनी ही शामें गुजारी थीं। प्रणयी भावों के उन्माद में नायिका ने बंबई शहर की तरफ देखा ही कहा था। उसे तो हर जर्रे में उसका प्रेमी ही दिखाई देता था। आज इतने वर्षों बाद

अपनी प्रेमी का चेहरा कोशिश करने के बाद भी भाव नहीं आ पाता–पर उसकी स्मृतियाँ अभी शेष है। भूलेगी तो जिएगी कैसे? बुद्धि से काम लेते हुए यह मलाड जाने वाली ट्रेन का टिकट खरीदती हैं। विगत को याद करती नायिका को यह स्मरण में आता है कि बंबई छोड़कर आते समय उसके प्रेमी ने यह बताया था कि वह बिहार के दुमका जिले में किसी गाँव में रहकर बंधुआ मजदूरों के लिए, उनकी समस्याओं को समझने तथा उनका हक उन्हें दिलवाने के लिए काम करना चाहता है। पर नायिका ने उसकी बातों पर विश्वास न करके उससे यह पूछा था कि क्या तुम नक्सलवादी हो! उसके प्रेमी ने उसे साथ चलने के लिए भी पूछा, पर वह गयी नहीं थी। एक साल बाद नायिका को पता चला था कि उसके नाम के ही एक व्यक्ति को सरकार ने बिहार के किसी इलाके से गिरफ्तार किया है और पांच साल बाद रिहा कर उसे देश छोड़कर जाने पर मजबूर किया है। अतः प्रेमी के पुनः न लौटने को जानकर उसने कई शामें गेटवे ऑफ इंडिया पर बैठकर गुजारी थी। आज सोलह बरस बाद उसके अविश्वास का धुंधलका हट रहा है। प्रेमी और प्रेमिका दोनों की मंजिले अलग थीं। इसीलिए प्रेमी अपने देश चला गया था और नायिका ने अपना बचाव कर लिया था। अपनी इस पलायनवादी विचारधारा पर पछताते हुए वह कहती है–"हम सब अभिमन्यु के विलोम हैं, वर्गगत विरासत के रूप में हमारे माँ–बाप हमें ऐसी स्वार्थी उदासीनता दे जाते हैं जो जीवन के हर मोड़ पर हमें चक्रव्यहू में घुसने से रोक रखती है।" अपने प्रेमी की अभिमन्यु से समानता स्थापित करती नायिका कहती है–"अभिमन्यु जैसे लोग शायद अब संसार में पैदा नहीं होते। होते हैं तो समाज उन्हें बहिष्कृत करके ही दम लेता है।"[12] प्रेमी की उच्चता और मानवीयता से प्रभावित नायिका भी अब सोलह वर्षों बाद बंबई शहर की झोपड़पट्टियों की गरीबी, गंदगी, फटेहाली, भूख, संडाध से रूबरू होकर बंबई के अस्तित्व को समझने की कोशिश करती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः मैं यह कह सकती हूँ कि जैविकता के नए अक्षांश के परिपालनार्थ आत्मशक्ति का विकसित करने में स्त्री का द्वेष ही विरोधी बनकर खड़ा दिखाई देता रहा है। उससे छुटकारा पाना भी उसके लिए चुनौती बना है, इस बिन्दु पर स्त्री स्त्री से नहीं मिल पाती। पुनः एक झगड़ा अस्मिता को लेकर खड़ा हो जाता है। स्त्री को स्त्री से मिलाने वाला पारस्परिक अन्तरभाव भी स्त्री से अस्तित्व की लड़ाई में एक सार्थक रोल अदा करता है। यहाँ भी मुद्दा सह अस्तित्व के शान्तिपूर्ण ढंग से सामंजस्य स्थित करने के लिए खड़ा है। महिला के लिए महिला का आन्दोलन स्वस्थता एवं कुशलता के साथ हो, ईर्ष्या द्वेष से रहित हो तो महिलाओं के लक्ष्य पाने की सार्थकता स्वतः सिद्धि प्राप्त होगी। सतत विचार बड़ी चीज है, वह किसी परिणाम की ओर कदम बढ़ाता है किन्तु द्विविधा का विचार विमर्श परिणाम की ओर अग्रसर नहीं होता। हमारी स्त्री सम्बन्धी धारणा अन्धविश्वास की ओर अग्रसर करने की नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि वह जो कुछ भी कर रहा है उसमें कितना तथ्य है। स्त्री के प्रति पुरुष का प्रेम उसे जीवन में प्रेम के साकार रूप का दिग्दर्शन करा देता है। स्त्री को प्रेम करने के उपरान्त उसे ज्ञात होता है कि प्रेम क्या है? और उसकी चरम अवस्था क्या है?, इसी प्रेम के आधार पर वह अपने परिवार से प्रेम करता है, अपने बच्चों पर वह अपने परिवार में प्रेम करता है, अपने बच्चों के प्रति प्रेमालु रहता है। पुरुष का प्रेम प्राप्त कर स्त्री घर को स्वच्छ व पवित्र बनाने की पूरी कोशिश करती रहती है। कभी–कभी आप देखते हैं कि घर की स्वच्छता ओर प्रबन्धता मन के अंश अंश को भी निर्मल और पवित्र कर जाती है। वह आपके मन को बाँध लेता है और काम से अवकाश पालते ही आपको आपका घर आपके मन में दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित होने लगता है।

उपर्युक्त विवेचनोपरान्त यह कहना उचित होगा कि मृदुला गर्ग के उपन्यासों में स्त्री जीवन की त्रासदी जैविकता के नए अक्षांश, स्त्री जीवन फैण्टेसी, स्वप्न और वास्तविकता के मनोभावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। विवाह करके अनेक ख्वाहिशें रखने वाली युवती के ये शब्द... "एक अदद दुनियादार आदमी को पकड़कर उसके साथ जिन्दगी बसर करूंगी। वह कहते हैं न जिसको विवाह, दिन में लौंग जीरे का बघार देकर दाल बनाऊँगी, रात को आलू मेथी की सब्जी। सर्दियों में नींबू का अचार डालूँगी, गर्मियों में आम का। घर चुस्त दुरुस्त रखूँगी, मेहमानों की घिसीपिटी बातें मुस्कुराकर झेलूँगी। महीने की पहली तारीख को रुपये गिनूँगी और बाकी तीस दिन खर्च का हिसाब रखूँगी और ..... और मातृसुख भोगूँगी.... अहा, जो मेरा प्राप्त है सब प्राप्त करूंगी मैं।"[13] ऐसा प्रतिपादित करती हुई मृदुला गर्ग के स्त्री जीवन की प्रसवानुभूति से सम्बन्धित कहानियों के बिम्ब पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। मृदृला गर्ग ने अपने कथा प्रसंगों में पश्चिमी सभ्यता के वस्तुकरण पर भी गम्भीरतापूर्वक प्रकाश डाला है।

सन्दर्भ

1. हंस–मई 1993 में उद्धृत अंश, मृदुला गर्ग.
2. Lukase G. European Realism Foreward, V.
3. टोपी–ग्लेशियर से, पृष्ठ 38.
4. युग सन्धियों पर, सच्चिदानंद हीरानन्द वात्सयायन अज्ञेय, पृष्ठ 77.
5. प्रकर, अप्रैल 1985, मूलचन्द गौतम के लेख 'मैं और मैं' से, पृष्ठ 16–17.
6. मैं और मैं, पृष्ठ 222, मृदुला गर्ग.
7. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवदेना, पृष्ठ 91, डॉ. उषा यादव.
8. समीक्षा, अक्टूबर–दिसम्बर 1980, 'चित्तकोबरा' शैलेश्वर सतीप्रसाद के लेख से, पृष्ठ 50.
9. चर्चित कहानियाँ (भूमिका), पृष्ठ 6, मृदुला गर्ग.
10. समकालीन हिन्दी कहानी, पृष्ठ 132, बलराम.
11. ग्लेशियर से, पृष्ठ 20, मृदुला गर्ग.
12. शहर के नाम, पृष्ठ 83, मृदुला गर्ग.
13. वही, पृष्ठ 83.